"कोओ नहीं है गैर बाबा"

रजि० नं० बी ४४४८
लाअिसेन्स न० १५

हरिजनसेवक

दो आना

(संस्थापक : महात्मा गांधी)

भाग १७ सम्पादक : मगनभाओी प्रभुदास देसाओ अंक २३

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाओी देसाओी
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद–९

अहमदाबाद, शनिवार, ता० ८ अगस्त, १९५२

वार्षिक मूल्य देशमें रु० ६
विदेशमें रु० ८; शि० १४

हिन्दी-अुर्दूका सवाल

हिन्दी साहित्य सम्मेलनके साथ तो मेरा संबंध सन् १९१८ से है, जब मैं पहली बार अुसका सभापति चुना गया था। अुस समय मैंने राष्ट्रभाषा-संबंधी अपने विचार जनताके सामने रखे थे। सन् १९३५ में जब मैं दुबारा अुसका सभापति चुना गया, तो मेरे समझाने पर सम्मेलनने हिन्दीकी मेरी अिस व्याख्याको स्वीकार कर लिया कि हिन्दीसे मतलब अुस जबान या बोलीसे है, जिसे अुत्तरी हिन्दुस्तानके हिन्दू और मुसलमान आम तौर पर बोलते हैं और जो फारसी या देवनागरीमें लिखी जाती है। कुदरती तौर पर अिसका नतीजा यह होना चाहिये था कि सम्मेलनके सदस्य अिस नओी परिभाषाके अनुसार हिन्दीका अपना ज्ञान बढ़ाते और अिस तरहका साहित्य तैयार करते, जिसे हिन्दू और मुसलमान दोनों पढ़ सकते। अिसके लिअे सम्मेलनके सदस्योंको सहज ही फारसी लिपि सीखनी पड़ती। मगर मालूम होता है, अुन्होंने अपनेको अिस गौरवपूर्ण अधिकारसे वंचित रखना पसन्द किया है। खैर, अब भी कुछ बिगड़ा नहीं — देर आयद, दुरुस्त आयद। काश, वे अब भी जागें। अुन्हें अंजुमनकी राह नहीं देखनी चाहिये। अगर अंजुमन भी जागे और कुछ करे, तो बड़ी बात हो। क्या ही अच्छा हो कि दोनों संस्थायें आपसमें मिलकर और अेकदिल होकर काम करें। लेकिन मैंने तो दोनोंको अपने-अपने ढंगसे अलग-अलग काम करनेकी बात भी सुझाओी है। मैं मानता हूं कि अिस तरह जो भी संस्था मेरे बताये हुअे ढंग पर काम करेगी वह न सिर्फ अपनी भाषाको समृद्ध बनायेगी, बल्कि आखिरमें अेक अैसी संयुक्त भाषाका निर्माण भी करेगी, जो सारे देशके काम आयेगी।

कमनसीबी तो यह है कि आज हिन्दी-अुर्दूका सवाल अेक कौमी झगड़ेका सवाल बन गया है। झगड़ेकी यह जड़ कट सकती है, बशर्ते कि दोनों दलोंमें से कोओी भी अेक दल दूसरे दलकी भाषाको अपनाने और अुसमें जितना कुछ लेने लायक है, अुसे अुदारतापूर्वक लेनेको तैयार हो जाय। याद रहे कि जो भाषा अपनी विशेषताकी रक्षा करते हुअे दूसरी भाषाओंसे खुलकर मदद लेती है, वह अपनी अिस अुदार नीतिके कारण अंग्रेजीकी तरह समृद्ध बन सकती है।

('हरिजनसेवक', २३-१-'४२)

लेकिन क्या अुर्दू हिन्दीसे अुतनी ही भिन्न है, जितनी बंगला मराठीसे? क्या अुर्दू अुसी हिन्दीका नाम नहीं, जो फारसी लिपिमें लिखी जाती है और संस्कृतसे नये शब्द लेनेके बजाय फारसी या अरबीसे नये शब्द लेनेकी तबीयत रखती है? अगर हिन्दू और मुसलमानोंके बीच किसी तरहकी अनबन न होती, तो लोग अिस चीजका खुशीसे स्वागत करते। जब आपसकी यह अदावत मिट जायगी, जैसा कि अेक दिन अिसे मिटना ही है, तो हमारी सन्तान हमारे अिन झगड़ों पर हंसेगी और अपनी अुस सर्वमान्य भाषा हिन्दुस्तानी पर गर्व करेगी, जो असंख्य लेखकों और लोगों द्वारा अुनकी अपनी आवश्यकता, रुचि और योग्यताके अनुसार कओी भाषाओंसे खुले दिलके साथ लिये गये शब्दोंके सुमेलसे बनाओी जायगी।

('हरिजनसेवक', ८-२-'४२) मो० क० गांधी

निकम्मा शिक्षण

चांडिल-सम्मेलनमें जयप्रकाशजीने विद्यार्थियोंको सलाह दी कि अेकाध सालके लिअे कॉलेज वगैरा छोड़कर भूदान-यज्ञके काममें लग जाओ। अिस पर विद्यार्थियोंने मेरा मत पूछा। मैंने अुनसे कहा, "भूदान-यज्ञके आन्दोलनमें काम न करना हो तो भी विद्यार्थी कॉलेज छोड़ सकते हैं।" यह सुनकर विद्यार्थियोंको मजा आया।

कॉलेजके बाहर ज्ञान-भंडार

सैंतीस साल पहलेकी बात है। कॉलेज छोड़कर ज्ञानकी खोजमें मैं बाहर निकला। कॉलेजमें और बहुतसी बातें दिखाओी दीं, लेकिन ज्ञान नहीं दिखाओी दिया। पर कॉलेज छोड़नेके बाद ज्ञानके अनंत द्वार खुल गये।

मेरी ज्ञानकी अुपासना आज तक जारी है। ज्ञानके समान पवित्र और कुछ नहीं है, अैसा ही मैं मानता आया हूं। अिसलिअे कॉलेजमें जो कालक्षेप होता था, अुसे मैं नहीं सह सका। विद्यार्थियोंसे मेरा हमेशा ही परिचय रहा है और पाठशालाओंमें क्या-क्या सिखाया जाता है, अिसकी मैं हमेशा जांच-पड़ताल किया करता हूं। सैंतीस साल पहले शिक्षणके नाम पर जो खाद्य हमें दिया जाता था, लगभग अुसी नमूनेका खाद्य आज भी दिया जाता है। अुस वक्त हमारा देश पराधीन था, आज स्वाधीन हो गया है। अितने बड़े परिवर्तनसे भी स्कूलके, पाठशालाके, शिक्षणमें कोओी अुल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ है।

जड़कर्म

देशमें अेक तरफ करोड़ों लोग जड़ कर्म कर रहे हैं। दूसरी तरफ लाखों विद्यार्थियोंको कर्म-शून्य मूढ़ शिक्षण दिया जा रहा है। हुक्काम और हुक्मी — सिर्फ हुक्म करनेवाले और सिर्फ हुक्म माननेवाले — अिस तरहके दो वर्ग बन गये हैं। दैन्य, दारिद्र्य और दुःखका सुकाल हो रहा है।

मध्यमवर्गीय

अेक जगह मध्यमवर्गकी तरफसे कुछ लोगोंने मेरे सामने शिकायत रखी। कहने लगे, "मध्यमवर्गकी हालत बहुत ही खराब है। अूपरके वर्गके पास पैसा है। नीचेके वर्गके पास कम-से-कम श्रम-शक्ति तो है। हमारे पास श्रम भी नहीं है और पैसा भी नहीं है। घरमें कमानेवाला अेकाध, खानेवाले कओी। कमाअीके

www.vinoba.in

हिसाबसे रहन-सहन रखनेकी आदत नहीं। रहन-सहनके हिसाबसे कमाओ करनेकी गुंजाअिश नहीं। आप जिस प्रकार गरीबोंको जमीन देंगे, क्या अुस प्रकार हमें भी देंगे?" मैंने कहा, "आपको जमीन देनेमें मुझे कुछ भी अड़चन नहीं, लेकिन आप लोगोंको जमीन लेनेमें अड़चन है। खेत पर आप खुद परिश्रम कर नहीं सकेंगे। फिर जमीनें आप किस तरह लेंगे? जब तक वर्तमान शिक्षण नहीं बदलेगा, तब तक मध्यमवर्गियोंके दुःख समाप्त नहीं होंगे।

"ठीक शरीर पनपनेके दिनोंमें यदि जाड़ा, हवा, धूप और वर्षा सहनेकी आदत न रही, तो अिच्छा होने पर भी खेतमें परिश्रम कैसे होगा?"

विनोबा

भारतकी गृहनीतिका क्या?

भारतीय पाठकोंको यह जानना दिलचस्प मालूम हो सकता है कि पश्चिमका अेक नागरिक आज भारतको और दुनियाके काम-काजमें भारत जो भाग ले रहा है अुसको किस दृष्टिसे देखता है, और भविष्यमें भी वह जो भाग ले सकता है अुसके बारेमें क्या सोचता है।

ज्यादातर भारतीय शायद अिस बातको नहीं महसूस करते कि भारतके राजनीतिज्ञ विश्वकी राजनीतिमें क्या पार्ट अदा कर रहे हैं, पश्चिमकी गुटबंदीकी भूमिकामें अुनके विचार कितने आश्चर्य-जनक मालूम होते हैं और ये विचार कितनी बड़ी चुनौती दे रहे हैं।

कुछ दिन पहले अेक प्रेस कान्फरेन्समें कोरियाके विषयमें पूछे गये अेक प्रश्नका जवाब देते हुअे श्री नेहरूने अेक बड़ी सादी बात कही थी कि हरअेक समस्याका शान्तिपूर्ण हल हो सकता है। अुस अुत्तरमें हम गांधीको फिरसे नेहरूमें मूर्तरूप लेते देखते हैं और यह लगातार हो रहा है। लेकिन यह अुत्तर अमेरिकाकी नीति और अधिकारियोंके मानसके खिलाफ जाता है — जिनका यह पक्का विश्वास है कि अमरीकी और रूसी जीवन-पद्धतिमें कोअी समझौता नहीं हो सकता; और यह कि जब तक साम्यवादका खात्मा नहीं कर दिया जाता या रूसको हरा नहीं दिया जाता, तब तक शीत या अुष्ण-युद्धकी नीतिका स्थान दूसरी कोअी नीति नहीं ले सकती।

अमेरिका ज्यादासे ज्यादा अुम्मीद सफल शीत-युद्धकी रखता है। लेकिन अिस शीत-युद्धने अनेक पश्चिमी राष्ट्रोंके सामने दिवालियेपन और अमेरिका पर पूर्णरूपसे निर्भर रहनेका खतरा पैदा कर दिया है।

और अब आपके अुपराष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन्, जो अमेरिकाका दौरा कर रहे हैं, हर तरहके सार्वजनिक अवसरों पर गांधीवादी तत्त्वज्ञानका अुदारतासे लोगोंको रसपान करा रहे हैं। अुस दिन अपनी बिदाअीके समय अुन्होंने केनाडाके लोगोंसे रेडियो पर जो बात की, अुसमें अेक बड़ा सच्चा लेकिन अपरिचित सिद्धान्त था। अुसके कुछ हिस्से मैं यहां देता हूं:

> "आज हमारा ध्येय तीसरे युद्धमें सैनिक विजय नहीं, बल्कि लोगोंके मानसको बदलनेके लिअे धैर्यके साथ किया जानेवाला समझदारीभरा राजनीतिक कार्य होना चाहिये . . . .
>
> "राजनीतिक गुटबंदीमें हमारा विश्वास नहीं है। युद्ध समस्याओंको हल नहीं करता, बल्कि अधिक समस्यायें पैदा करता है। हम शान्तिकी राजनीतिमें विश्वास करते हैं और न्याय पर खड़ी शान्तिमें विश्वास रखते हैं। युद्ध किसी अच्छे साध्यका बुरा साधन नहीं है। वह अपने आपमें ही बुरी चीज है। वह विजेता और पराजित दोनोंको परेशान कर देता है। राजनीतिक कार्यका सही ध्येय हमारे शत्रुओंका नाश नहीं, बल्कि अुन्हें शिक्षा देना, अुनकी वृत्तियों और व्यवहार पर प्रभाव डालकर अुनका हृदय-परिवर्तन करना है। . . . .
>
> "हमें आज अमरीकी या रूसी जीवन-पद्धति नहीं, मानवीय जीवन-पद्धति चाहिये। विज्ञानने हमें पृथ्वी-तलसे भूख और गरीबीकी विपत्ति निःशेष कर सकनेकी शक्ति दे दी है। दुनियाके जो देश कम्युनिस्ट प्रभावके बाहर हैं, यदि हम वहां सुख और समृद्धिकी मजबूत स्थापना कर दें, तो शांतिकी संभावना और आशा बढ़ जायगी।
>
> "आज अेक विश्व-व्यापी क्रान्ति चल रही है, और यह क्रान्ति स्वतंत्र रूपसे चल रही है; अुसके पीछे कम्युनिज्मकी प्रेरणा नहीं है। गैर-कम्युनिस्ट देशोंमें अधिकांश देशोंके निवासी रोग, भूख और अवज्ञाका कष्ट अुठाते आये हैं; अब वे आर्थिक विकासकी मांग कर रहे हैं।
>
> "हम लोगोंने खुद राजनीतिक और आर्थिक शोषणका कष्ट भोगा है। स्वभावतः हमारी अुनसे सहानुभूति है, जो गुलामीसे मुक्त होनेके लिअे प्रयत्न कर रहे हैं।
>
> "अगर हम देखते हैं कि दुनियाके वे शक्तिशाली देश, जो संयुक्त-राष्ट्र-संघमें प्रमुखताका स्थान रखते हैं, राष्ट्र-संघके चार्टरमें अुल्लिखित आदर्शोंका पूरा निर्वाह नहीं करते, शान्ति और स्थिरताकी ओटमें मौजूदा स्थितिको ही कायम रखनेकी कोशिश करते हैं, अगर हमें मालूम होता है कि अुनकी अिस कोशिशके पीछे स्वार्थकी भावना है, तो हमें बहुत दुःख होता है। शक्ति और प्रभुता मनुष्यको पतनकी तरफ प्रेरित करती है, लेकिन विवेकबुद्धि और अंतरात्माकी प्रेरणा अुसका अुद्धार करती है। हमें चाहिये कि हम अपनी समझके अनुसार दूसरोंमें दिखनेवाले राक्षसके खिलाफ न जूझकर, अपने अन्दर बसनेवाले भगवानको प्रगट करनेमें ही अपनी शक्ति लगायें।"

पश्चिममें आज अैसे हजारों लोग हैं, जो अिन सारे अुद्गारोंका समर्थन करेंगे। अिन अुद्गारोंकी विशेषता अिस बातमें है कि वे अेक राज्यके अेक बड़े अधिकारी द्वारा कहे गये हैं — अेक अैसे राज्यके जो दुनियाके राजनीतिक क्षितिज पर विशेष चमकके साथ प्रगट हो रहा है। कोअी भी जिम्मेदार पश्चिमी राज्याधिकारी अैसा नहीं बोलेगा। लेकिन संयुक्त-राष्ट्र-संघ आज जिस दलदलमें फंस गया है, अुससे निकलनेका रास्ता तो यही है। भारत अगर अपनी आवाजका बल अिसी रास्तेके पक्षमें और ज्यादा लगाता जाय, तो संभव है कि दुनिया तीसरे विश्व-युद्धके संकटसे बच जाय।

लेकिन अिस संबंधमें यह सवाल जरूर अुठता है कि भारतकी गृह-नीति कैसी हो? भारत आज अेक संक्रांतिकी अवस्थासे गुजर रहा है। अैसे मौके पर यह याद रखना चाहिये कि आखिर किसी देशकी विदेश नीति अुसकी गृह-नीतिसे निर्धारित होती है। पश्चिममें चलनेवाली सत्ताकी राजनीति अुसकी आक्रामक आर्थिक नीतिसे, दुनियाके बाजारों और साधन-संपत्ति पर अपना अेकाधिकार चाहनेकी अिच्छासे अुत्पन्न हुअी थी। आज पूर्वमें और रंगीन जातियोंके देशोंमें जो जागृतिकी लहर आयी है, अुसने पश्चिमकी आक्रामक आर्थिक नीतिका खात्मा कर दिया है, और मानव-कल्याणकारी मानवोचित अर्थनीतिका विकास करनेकी प्रेरणा पैदा की है।

मुझे लगता है भारत आज अिस सोच-विचारमें पड़ा हुआ है कि किस रास्तेका चुनाव किया जाय। अुसके सामने अेक-दूसरेकी विरोधी दो जीवन-पद्धतियां और अुनके अनुसार दो तरहकी अर्थ-नीतियां हैं — पश्चिमकी अर्थनीति और जीवन-पद्धति, और गांधीजीकी बतलायी अर्थनीति और जीवन-पद्धति; और वह निर्णय नहीं कर पा रहा है कि अिनमें से किसे चुने। अगर वह पश्चिमके रास्ते पर चलता है तो अुसका वही हाल होगा जो पश्चिमी देशोंका हुआ है; अर्थात् वह विनाशकारी सैन्यवादके चंगुलमें फंसकर अपनी

www.vinoba.in

गति खो बैठेगा। तब अुसे पश्चिमी देशोंकी तरह अपने आर्थिक संघटनके टूटनेका भय सतायेगा, विभिन्न राजनीतिक वादोंकी अुलझनमें फंसना होगा, और आजकलके व्यापक युद्धोंमें हिस्सा लेनेका खतरा अुठाना होगा। लेकिन अगर वह संपूर्ण मनसे गांधीजीका बताया रास्ता अपनावे, तो मेरा विश्वास है कि वह धीरे-धीरे नीतिके क्षेत्रमें और अर्थके क्षेत्रमें भी दुनियाके देशोंका नेता बन सकेगा।

हमारी पश्चिमी और आपकी पूर्वी सभ्यता, दोनों ही आज बीमार हैं, दोनोंकी अपनी विशेष कमजोरियां हैं जिनके कारण वे प्रगतिहीन हो गयी हैं; और अब हमारी समझमें आ रहा है कि दोनोंका अिलाज करीब-करीब अेक ही है। हम दोनोंको ही शक्ति और सत्ताको बढ़ानेवाली या आक्रामक अर्थनीति नहीं चाहिये, हमें चाहिये मानवीय अर्थनीति — अेक अैसी रचना जो मनुष्यके संपूर्ण विकासकी व्यवस्था करे, पास-पास रहनेवाले पड़ोसी देशों और मनुष्य-समुदायोंमें सहयोगकी वृत्ति पैदा करे, जो केवल धन-संपत्ति और सुख-सुविधाकी वस्तुओंके निर्माणमें न लगी रहे, बल्कि मनुष्योंका — पुरुषों और स्त्रियोंका निर्माण भी करे। जीवन रोटीसे ज्यादा बड़ा है, और समृद्धिका अर्थ वस्तुओंकी विपुलता नहीं; वह है मनुष्यकी सर्जन-मूलक आत्म-अभिव्यक्ति, पड़ोसियोंके साथ प्रेमपूर्वक रहनेका आनन्द। अुसमें सुख-सुविधाकी भौतिक वस्तुओंका भी समावेश होता है, लेकिन जितनी पर्याप्त हों, अुससे अधिक नहीं; विलासिता तो नहीं ही होनी चाहिये। क्योंकि वह शरीर और आत्मा दोनोंको मारती है। पश्चिमी अर्थ-रचना अिन सब मूल्योंकी कोअी कीमत नहीं करती, अुसका लक्ष्य मुनाफा और वस्तुओंकी विपुलता पर ही केन्द्रित है। वह प्राणहीन वस्तुओंके ढेर लगाती रहती है और मनुष्यको मशीनमें जोत, अुसे मशीन जैसा ही बनाकर अुसकी आत्माका तिरस्कार करती है। तो हम दोनों गोलार्धोंके निवासियोंका अुद्देश्य अेक ही है और यह भी निश्चित है कि या तो दुनियाको अिस अुद्देश्यकी प्राप्तिका प्रयत्न करना चाहिये, या अुसका विनाश हो जायगा।

विल्फ्रेड वेलॉक

[सर्वोदय, तिरुपुर, जुलाअी १९५३ से संक्षिप्त रूपमें अुद्धृत]
(अंग्रेजीसे)

गरीबोंका खयाल करो

अेक ग्रामसेवक बड़े दुःखके साथ लिखते हैं:—

"भारतके सामने आज अनेक पेचीदा सवाल मुंह फैला कर खड़े हैं, जिनमें महत्त्वके हैं अन्नकी कमी, बेकारीका भूत, और खरीदशक्तिका ह्रास वगैरा। अिनका मुकाबला करनेका खयाल कोअी नहीं करता। सुशिक्षित समाजका ध्यान अिस ओर बहुत कम मालूम होता है। और जिन चीजोंका राष्ट्रहितकी दृष्टिसे बहुत कम मूल्य है, अुनके पीछे हम पागल बनकर दौड़ते हैं। क्रिकेटकी प्रतियोगितायें, अमरीकी ढंगकी कुश्तियां, अभिरूप लोकसभायें, व्याख्यान-मालायें, छोटी बच्चियोंकी सिनेमा नृत्य-स्पर्धायें और अब चल रहा है अेवरेस्ट विजयका दौरदौरा। क्या यही हमारे सामने महत्त्वके सवाल हैं? क्या अिनके पीछे अितना पागल बन जाना हमारे लिअे शोभाकी बात है? अिन चीजोंसे देशकी प्रगतिमें क्या वृद्धि होती है? यह मुझ जैसा गंवार आदमी समझ नहीं पाता।"

पत्रलेखकका दुःख सही है। हमारे अूपरके वर्गोंको चाहिये कि वे गरीबोंका खयाल रखें और अपनी ही आपाधापी या अैश-आराममें न फंस जायं। अिससे राष्ट्रका पतन होगा।

२३-७-'५३ म० प्र०

क्या यह टाला नहीं जा सकता था?

आशा की जाती है कि संयुक्त राज्य अमेरिकाकी कांग्रेस प्रेसिडेन्ट आअिसनहोवर द्वारा पेश की गअी अिस योजनाको शीघ्र स्वीकृति दे देगी कि कोरियाकी लड़ाअीकी जरूरतें पूरी करनेके लिअे पहले जो रकम निर्धारित की गअी थी, अुसके अेक हिस्सेसे लड़ाअीके बाद अब कोरियाका पुनर्निर्माण शुरू किया जाय। अुन्होंने यह सुझाव रखा था कि अुन १२० करोड़ डालरमें से, जो अेक साल और लड़ाअीमें भाग लेने पर अमेरिकाको खर्च करने पड़ते, अिस कामके लिअे शुरूमें २० करोड़ डालरकी रकम दे दी जाय।

अमेरिकन कांग्रेसको दिये हुअे अपने सन्देशमें प्रेसिडेन्टने कोरियाके लोगोंकी करुण स्थितिका अिन शब्दोंमें वर्णन किया था:

"अिस लड़ाअीमें कोरियाके लोगोंकी जो बरबादी हुअी और अुसकी सारी अर्थरचना जिस तरह टूटकर नष्ट हो गअी, वह भयंकर है। १९५० में जब लड़ाअी शुरू हुअी, तबसे लेकर अब तक दक्षिणी कोरियाके १० लाख आदमी मारे जा चुके हैं। २५ लाखसे ज्यादा बेघरबार और निराश्रित बन गये हैं। ५० लाख आदमी जीवित रहनेके लिअे पूरी तरह या अंशतः राहत पर निर्भर करते हैं। जायदादकी बरबादी १०० करोड़ डालरसे अूपर पहुंच गअी है। यह आर्थिक नाश अत्यन्त भयंकर कहा जायगा . . . . ।"

न्यूयॉर्क स्थित संयुक्त राष्ट्रसंघके अेक अधिकारीने कोरियाकी दयनीय हालतका ज्यादा विस्तारसे नीचेके शब्दोंमें वर्णन किया है:

"धानके खेतों, खदानों और कारखानोंको, जो अेक समय कोरियाकी जनताके जीवन-निर्वाहके साधन थे, बहुत ज्यादा नुकसान पहुंचा है। मुद्राप्रसारके कारण सारा अर्थ-तंत्र खतरेमें पड़ गया है और औसत कोरियन भयंकर गरीबीका शिकार हो गया है।

"लड़ाअीमें नागरिक हताहतोंकी संख्या ही हजारों-लाखों तक पहुंच गअी है। लाखों लोग बेघरबार हो गये हैं। असंख्य बच्चे अनाथ बन गये हैं। बहुत बड़ी संख्यामें परिवारके परिवार मार डाले गये या अेक दूसरेसे बिछुड़ गये हैं।

"कोरियन गणतंत्रके लोगोंकी मौजूदा जरूरतें पूरी करनेके लिअे लगभग ९,००,००० मकान खड़े करने होंगे। करीब ४,००,००० मकान पूरी तरह नष्ट हो गये हैं, जिनकी जगह नये मकान बनाने होंगे। फिर अुत्तरी कोरियाके निराश्रितोंको रखनेके लिअे भी मकानोंकी जरूरत होगी।

"शिक्षण-पद्धति तथा डाक्टरी और समाज-कल्याणके कामोंकी — जिनमें अनाथों और बूढ़ोंकी देखभाल करनेवाली संस्थायें भी शामिल हैं — नये सिरेसे पुनर्रचना करनी होगी। निराश्रितोंको फिरसे बसानेकी और हजारों-लाखों अपंगोंके पालन-पोषणकी बहुत बड़ी समस्या सामने खड़ी है। यहां तक कि खुद सरकारके लिअे भी अिमारतोंकी जरूरत है, जहां बैठकर वह अपना काम कर सके।"

यह जानकर खुशी होती है कि लड़ाअीके घावोंसे धराशायी बने हुअे कोरियाको, नया जीवन देनेके लिअे जीवन-दायिनी प्राण-वायुके डालर-अिन्जेक्शन दिये जा रहे हैं। लेकिन अिससे भी ज्यादा गहरा सवाल तो यह है कि हम किसीको अैसी निर्दयता और अमानुषिकतासे धराशायी क्यों बनावें? क्या यह जरूरी है कि पहले तो हम निर्दोष मानवता पर कठोर प्रहार करें और फिर अुसकी मरहम-पट्टीका प्रबंध करें? क्या अैसा करना सचमुच मूर्खता नहीं है? क्या यह सचमुच अनिवार्य था?

३०-७-'५३ **मगनभाअी देसाअी**
(अंग्रेजीसे)

www.vinoba.in

हरिजनसेवक

८ अगस्त १९५३

"कोओ नहीं है गैर बाबा"

अुत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलनके अध्यक्ष डॉ० बाबूराम सक्सेनाने अुर्दूको प्रादेशिक भाषा स्वीकार करनेके विरुद्ध दिये अपने अेक अखबारी बयानमें मेरे विषयमें नीचेके शब्दोंमें अुल्लेख किया है। अुसमें अुनकी दृष्टिसे मेरा यह दोष हुआ लगता है कि मैंने 'हरिजन' पत्रोंमें 'खेदजनक निर्णय' नामक लेख लिखकर अुत्तर-प्रदेशमें राष्ट्रभाषा और हिन्दी-अुर्दूके बारेमें चल रहे झगड़ेके सम्बन्धमें कुछ कहा है। अुस लेखमें मैंने जो कुछ कहा है, वह सच पूछा जाय तो अिन पत्रोंके पाठकोंके लिअे किसी तरह नया नहीं है। तत्त्वतः वह बात गांधीजी अिन पत्रोंमें हमेशा कहते रहते थे। अुसी परसे आजकी परिस्थितिमें जो बात अुचित हो सकती है, वह सार रूपमें मैंने पेश की है। संभव है अैसा करनेमें मेरी कुछ भूल हुअी हो; वह मुझे बताअी जा सकती है। लेकिन डॉ० सक्सेनाने अैसा नहीं किया।

यह साफ है कि मेरा वह लेख डॉ० सक्सेनाको पसन्द नहीं आया। यदि मैं कहूं कि अिसमें कोअी आश्चर्य नहीं, तो वे मुझे माफ करेंगे। क्योंकि हिन्दी साहित्य सम्मेलनको भी गांधीजीकी यह बात पसन्द नहीं थी। अुसी कारणसे सन् १९४०-४२ के बाद गांधीजीको वह संस्था छोड़नी पड़ी थी और राष्ट्रभाषाके बारेमें सही विचार पेश करने और अुसे आगे बढ़ानेके लिअे नअी संस्था बनानी पड़ी थी। लेकिन यह आशा रखी जाती थी कि संविधान बनाते समय अिस सारी बातका और राष्ट्रकी भाषा-संबंधी समग्र नीतिके बारेमें जो संतोषजनक हल निकाला गया था, अुसका हिन्दी साहित्य सम्मेलन स्वागत करेगा। लेकिन अुसने वह नीति स्वीकार नहीं की और अपनी पुरानी नीतिके मुताबिक वर्धा समितिके जरिये प्रचार-कार्य जारी रखा। बम्बअी सरकारका ध्यान अिस तरफ गया और अुसने वर्धा समितिके प्रचार-कार्यको प्रमाणित नहीं किया। बम्बअी सरकारके अिस कदमकी सचाअीके बारेमें अगर अभी भी किसी प्रमाणकी जरूरत हो, तो डॉ० सक्सेनाका अुपर्युक्त वक्तव्य अुसका अेक सबल प्रमाण कहा जा सकता है। अुसमें वे मेरे विषयमें कहते हैं:

> "जो लोग अुत्तर भारतके नहीं हैं और अिस कारणसे जिन्होंने (हिन्दी-अुर्दू) के झगड़ेके फल नहीं चखे हैं, अुन्हें सच्ची स्थितिका खयाल नहीं है। 'हरिजन' पत्रोंके संपादक श्री मगनभाअी देसाअी अिसी वर्गके आदमी हैं..... श्री देसाअी जैसे कार्यकर्ताओंने बहुजन समुदायकी समझमें न आनेवाले शब्दों और लिपिमें निकलनेवाले समन्सों या पुलिसकी रिपोर्टोंकी पीड़ा नहीं भोगी है।"
> (लीडर, २६-७-'५३ की रिपोर्टमें से)

यह सच है कि मैं अुत्तर भारतका नहीं हूं। लेकिन मैं जानता हूं कि भारतके सारे प्रदेशोंमें अदालतोंके समन्स और पुलिसकी रिपोर्टें, भले वे किसी भी भाषा या लिपिमें हों, ८० फी सदी से अूपर लोगोंके समझमें नहीं आतीं। और बाकीके जो लोग हैं, अुनमें से अुत्तर प्रदेशमें जो नागरी जानते हैं अुन्हें अुर्दू लिपि अनुकूल नहीं पड़ती और जो अुर्दू लिपि जानते हैं अुन्हें नागरी अनुकूल नहीं पड़ती। और यही कारण है कि अुत्तर प्रदेशमें लाखों आदमियोंने दोनों लिपियां सीख ली हैं। गांधीजी कहते थे कि अिससे लोगोंको लाभ होगा।

और यह कहना भी ठीक नहीं है कि हिन्दी-अुर्दूके झगड़ेसे केवल अुत्तर भारतको ही पीड़ा भोगनी पड़ी। अुत्तर प्रदेशमें सुलगते रहे सम्प्रदायवादके अिस झगड़ेने सारे देशको जलाया है। अुस झगड़ेको मिटानेके लिअे गांधीजीने १९१८ से भाषाके क्षेत्रमें जो अथक प्रयत्न किये, अुनमें मैंने थोड़ा हिस्सा लिया है, अिसलिअे मुझे अुसकी पीड़ाका अनुभव है। वह झगड़ा आज भी अुत्तर प्रदेशमें शान्त नहीं हुआ, यह देशका बड़ा दुर्भाग्य है।

गांधीजीके अुस प्रयत्नका रहस्य न समझनेसे सारे देशको कितनी मुसीबतें सहनी पड़ीं, यह सब कोअी जानते हैं। क्या आज भी अुस जहरको ताजा बनाये रखना है? सच बात तो यह है कि अब अुस जहरको शान्त करना चाहिये और फिरसे अुस पीड़ाको पैदा नहीं होने देना चाहिये। श्री सक्सेना जैसे अुत्तर प्रदेशके हिन्दी-भक्त अिस पर विचार करें, अैसी मेरी अुनसे नम्र प्रार्थना है।

और देशके लिअे अेक राष्ट्रभाषाके विचारके बारेमें श्री सक्सेना मुझे यह याद दिलावें कि मैं अुत्तर भारतका नहीं हूं, यह कैसी बात है? अुन्होंने यदि पूनाकी अखिल भारतीय भाषा विकास परिषद्का प्रस्ताव देखा हो ('हरिजनसेवक,' २७-६-'५३), तो अुसमें अुन्होंने पढ़ा होगा:

> "संविधानके आदेशके अनुसार भारतीय संघकी राजभाषाका विकास करना **भारतकी सारी भाषायें बोलनेवालोंका समान कार्य है**। . . . . वह मूल भाषाकी प्रकृति और प्रतिभाके अनुरूप होगी।"

श्री सक्सेना अुत्तर प्रदेशकी अपनी अेक खास शैलीकी हिन्दीको वहांकी प्रादेशिक भाषा रखना चाहें, तो खुशीसे अैसा कर सकते हैं। लेकिन अुसी कारणसे अुसकी दूसरी शैली अुर्दूको भी वहांकी प्रादेशिक भाषा बननेका हक है, यह अुन्हें स्वीकार करना चाहिये; और अुसमें राष्ट्रभाषाके विकासका हित होनेके कारण अुत्तर भारतके बाहरके लोगोंकी भी अुसमें दिलचस्पी है।

और हिन्दीसे भिन्न अुर्दू भाषा भारतके संविधानकी आठवीं सूचीमें जो गिनाअी गअी है, वह किस लिअे? अुसका क्या कारण है? अिसका अर्थ भी समझना चाहिये।

फिर अगर हिन्दी-अुर्दूमें भेद सिर्फ शब्दभंडार और लिपिका ही हो, तो यह कौन अितना बड़ा भेद है कि जिसकी वजहसे अुर्दूको पराअी और विदेशी संस्कृतिकी भाषा माना और मनवाया जाता है? हम अंग्रेजी भाषाके विकाससे जानते हैं कि भाषाके विकासके लिअे शब्द तो सारी दुनियासे लिये जा सकते हैं। यह तो शायद ही कोअी कहेंगे कि हिन्दीका अिस तरह विकास नहीं होना चाहिये। बल्कि हिन्दी भाषाने तो अैसा केवल शब्दोंके संबंधमें ही नहीं, समग्र जीवन और संस्कृतिके संबंधमें भी हमें सिखाया है कि:

> "कोअी नहीं है गैर बाबा
> कोअी नहीं है गैर।"
>
> * * *
>
> "ना कोअी बैरी नाहिं बिगाना,
> सकल संगि हम को बनि आअी।"

महान संस्कृति और भाषाके अिस सन्देशको अुत्तर भारत कैसे भूल सकता है? श्री सक्सेना जैसे मित्रोंसे मेरा निवेदन है कि वे अिस महान संस्कृतिको हमेशा याद रखें, क्योंकि हम सब अुसकी सन्तान हैं।

३-८-'५३ मगनभाअी देसाअी
(गुजरातीसे)

www.vinoba.in

अुत्तर प्रदेशका भाषा-संबंधी विवाद

गये महीनेमें पंडित नेहरू दो-चार दिनके लिअे अपने घरके प्रान्तमें — अुत्तर प्रदेशमें थे। वहां अुनके कअी व्याख्यान हुअे, जिनमें अुन्होंने आजकल चलनेवाले विविध सवालोंकी चर्चा की। अिनमें से अेक सवाल भाषा पर चलनेवाले विवादका भी था। अुस पर दो बार वे बोले। अुन्होंने जो कुछ कहा अुसकी रिपोर्ट हम 'नेशनल हैराल्ड', लखनअू, ता० १९-७-'५३ के अंकसे यहां अुद्धृत करते हैं:—

ता० १८ जुलाअीको अलाहाबादमें कायस्थ पाठशालाके मैदानमें अेक सार्वजनिक सभामें भाषण करते हुअे पंडित नेहरूने कहा कि कअी लोगोंको अभी तक आजादीका सही अर्थ ही समझमें नहीं आता और वे देशको जहांका तहां पीछे घसीट ले जाना चाहते हैं। अिस सिलसिलेमें अुन्होंने भाषाके सवालका जिक्र किया और कहा कि जनताके किसी भी समुदायकी भाषा या संस्कृतिको दबानेकी कोशिश करना अनुचित है। अुन्होंने कहा कि अुर्दू कोअी पाकिस्तानकी भाषा नहीं है और अुसकी अुपेक्षा और अवज्ञा करना हमारे गौरवके अनुकूल नहीं होगा।

आगे बोलते हुअे पंडित नेहरूने कहा कि भाषामें देशकी सांस्कृतिक संपत्ति निहित होती है। हम लोगोंने निर्णय किया है कि हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है और अुसके अिस पदके अनुकूल हम अुसे अेक शक्तिशाली भाषा बनायेंगे। लेकिन साथ ही हमें प्रान्तीय भाषाओंको, जिनका साहित्य काफी समृद्ध है, विकासका समान अवसर देना चाहिये। भाषाका विकास कानून पास करके नहीं किया जा सकता, अुसके लिअे अुसी कोटिकी संभाल और सावधानी चाहिये, जो नन्हें पौधेकी रक्षाके लिअे जरूरी होती है।

अुसी दिन आनन्द-भवनमें कांग्रेस-कार्यकर्ताओंको भाषण देते हुअे अुन्होंने कहा:

"हम अेक विशाल देशके निवासी हैं जिसमें अनेक प्रदेश हैं, विविध भाषाअें हैं, और रहन-सहनकी अलग-अलग रीतियां हैं। अेक-दूसरेके प्रति यदि हम सहिष्णुताका भाव न रखें तो हम गिरेंगे। सामाजिक सवालों पर या भाषाके विषयमें हमें अपना मत दूसरों पर लादनेका आग्रह नहीं रखना चाहिये।"

अुन्होंने आगे कहा, "अुर्दूका हिन्दीकी प्रतियोगिता करनेका सवाल नहीं है। लेकिन अुर्दूको दबानेका या किसी तरह अुसका विकास रोकनेका भी कोअी सवाल नहीं होना चाहिये। सच बात तो यह है कि हिन्दीके साथ-साथ हमें दूसरी भाषाओंको भी समृद्ध करना है। अुर्दूको हर तरहका प्रोत्साहन मिलना चाहिये, ताकि वह बढ़ सके।"

'नेशनल हैराल्ड' ने अिन भाषणोंके प्रसंगमें अिस सवाल पर अपने संपादकीय लेखमें निम्न-लिखित विचार प्रगट किये हैं:—

"अेक महत्त्वपूर्ण सवाल जिसकी कांग्रेस-अध्यक्षने विशेष चर्चा की अुर्दूकी स्थितिके विषयमें है, जिस पर अुत्तर प्रदेशमें जब तब कुछ विवाद चलता रहता है। यह विवाद बढ़े और अवांछनीय रूप ग्रहण करे, अुसके पूर्व बहुत अच्छा होगा कि हिन्दी-प्रेमी और अुर्दू-प्रेमी दोनों ही अिस सवाल पर अुन मुद्दोंको ध्यानमें रखकर विचार करें, जिन पर कांग्रेस-अध्यक्षने अपने भाषणोंमें काफी जोर दिया है।

"पहला मुद्दा यह है कि हिन्दी हमारी संघ-भाषा होगी और अिस रूपमें अुसे सारे देशकी मान्यता मिलेगी। तो अिस अर्थमें राष्ट्रीय भाषाकी तरह हिन्दीकी जो विशेष स्थिति है, अुसकी प्रतियोगिता कोअी दूसरी भाषा नहीं कर सकती, यह बिलकुल निश्चित है। अिस हिन्दीके रूप और शैलीकी चर्चा करनेकी अभी जरूरत नहीं, क्योंकि अभी अुसका निर्माण अितना नहीं हुआ है कि अुसका विचार किया जाय।

"दूसरा मुद्दा यह है कि हमारा संविधान जिन भाषाओंको मान्य करता है, अुनमें से किसी भाषाको बोलने-समझनेवाले जहां काफी संख्यामें हों, फिर वह जिस-किसी भाषाका क्षेत्र हो, वहां अुक्त भाषा-भाषियोंके लिअे कुछ सुविधाओंकी व्यवस्था जरूर करना चाहिये।

"तीसरा मुद्दा यह है कि अुत्तर प्रदेश जैसे प्रान्तमें अुर्दूके अधिकारको अेकदम अस्वीकार नहीं किया जा सकता। अिसके सिवा दूसरे देशोंके, खासकर मध्य-पूर्वके देशोंके साथ हमारे जो संबंध हैं, अुनकी दृष्टिसे भी अुर्दू भाषा और लिपिका अेक खास महत्त्व है।

"अगर अिस सवाल पर अूपर कहे गये मुद्दोंको ध्यानमें रखकर विचार किया जाय, तो अुसके अुपयोगी परिणाम आ सकते हैं। अभी तक हमारी राज्य सरकारने कअी बार की गयी अिस शिकायतका कोअी जवाब नहीं दिया है कि स्कूलोंमें कअी जगह अुर्दूको अुसके स्थानसे हटा दिया गया है या कि अुसके शिक्षणकी सुविधायें वापस ले ली गयी हैं; और यह देखकर थोड़ा आश्चर्य होता है कि अिस तरहकी शिकायतका अितने दिन तक कोअी जवाब नहीं दिया गया है। शीघ्र ही अेक अुर्दू-कान्फरेंस होनेवाली है। अुसका अुद्देश्य मामूली ही है, यद्यपि यह देखना है कि अुसकी मांगें ठीक क्या होंगी। अिस प्रश्न पर विचार करनेमें अेक गड़बड़ तो 'राज्य-भाषा', 'प्रादेशिक भाषा' जैसे अनिश्चित शब्द-प्रयोगोंके व्यवहारसे होती है। अैसे प्रयोगोंसे बचना चाहिये। और फिर अुस पर तर्क-शुद्ध विचार होना चाहिये। कांग्रेस-अध्यक्षका मत सुन चुकनेके बाद अब कांग्रेसियोंको अिस विवादमें सही नेतृत्व कर सकना चाहिये।"

अिस संपादकीयमें अेक मुख्य मुद्दा यह पेश किया गया है कि राष्ट्रीय भाषाके रूपमें हिन्दीकी स्थिति अद्वितीय है। और जैसा पण्डितजीने कहा है, अुर्दू या किसी दूसरी भाषाका अुसके साथ प्रतियोगिता करनेका कोअी सवाल नहीं है। लेकिन, जैसा संविधानके आठव शेड्यूलमें बताया गया है, अेक दूसरी हिन्दी भी है। वहां अुर्दू, बंगाली, अुड़िया आदिका अुल्लेख हुआ है। अिनमें से कोअी भी, और साथ ही वहां अुल्लिखित हिन्दी भी, संघकी सरकारी भाषा — यद्यपि सेक्शन ३४३ में अुसका नाम हिन्दी दिया गया है — के साथ प्रतियोगिता नहीं कर सकती। और न अिन भाषाओंको आपसमें ही कोअी प्रतियोगिता करनी चाहिये। अिन सबको अपनी अपनी अुन्नति करनी चाहिये, और साथ ही सबको मिलकर संघकी मान्य सरकारी भाषा हिन्दीका विकास और समृद्धि करनी चाहिये। लेकिन यह नहीं भूलना चाहिये कि समग्रका स्थान अुसका अेक अंश नहीं ले सकता। अुत्तर प्रदेशमें जो भाषा-संबंधी विवाद चल रहा है, अुसमें अिस बातको ठीक ठीक न समझ सकनेके कारण बहुत भ्रम पैदा हुआ है। मेरे पिछले लेख 'खेदजनक निर्णय' (हरिजन-सेवक, १८-७-'५३) की कहीं-कहीं बहुत तीव्र आलोचना हुअी है। अुससे मुझे आश्चर्य नहीं हुआ। अिन आलोचनाओं पर मैं यहां कोअी विचार नहीं करना चाहता; सिर्फ अितना ही कहता हूं कि अुनका कारण भी बहुत अंशमें यही है कि शेड्यूलमें जिन चौदह भाषाओंका अुल्लेख हुआ है, सामान्यतः अुनके मुकाबलेमें और खासकर हिन्दी और अुर्दूके मुकाबलेमें संघकी सरकारी भाषा हिन्दीकी क्या स्थिति है अिसकी सही परीक्षा नहीं हुअी है।

२९-७-'५३ मगनभाअी देसाअी
(अंग्रेजीसे)

www.vinoba.in

रांची जिलेमें विनोबाजी

नागफेनीमें विनोबाजी अेक मंदिरमें ठहरे थे। शामका समय था। आरती समाप्त हो चुकी थी, परंतु घंटानाद कानोंमें गूंज रहा था। मंदिरके सामने विनोबाजी टहल रहे थे। सहसा अेक गरीब किसान अुनके पास पहुंचा और अुसने हाथ जोड़कर अुनसे कहा, "बाबा, मैंने अपनी ३ अेकड़ जमीनमें से ४० डेसीमल जमीन दान कर दी है। तो अब मैं अुस दान दी हुअी जमीनकी काश्त नहीं करूंगा। अुसका अेक दाना भी लेना पाप है, क्योंकि वह तो दान कर दी गअी है।" विनोबाजीने अुसे समझाया कि देशकी जमीन अिस तरह पड़ती नहीं रहनी चाहिये, तुम्हें अिस पर काश्त करनी होगी। परंतु वह अिस चीजको नहीं स्वीकार कर पाता था। अुसने कहा, "आप चाहे जिसे वह जमीन दे दीजिये, परंतु मैं अुसका दाना भी नहीं ले सकता हूं।" फिर विनोबाजीने अुससे कहा, "जब तक बंटवारा नहीं होता मेरी ओरसे तुम्हें वह जमीन जोतना है।"

अुस दाताकी मनोवृत्ति भारतीय किसानकी प्रातिनिधिक मनोवृत्ति थी। यात्रामें अैसे कअी किस्से बने हैं। थोड़ी देर बाद विनोबाजी प्रगट चिंतनके जैसा बोलने लगे, "यह है हमारी जनताकी श्रद्धा। और अिस पर भी पढ़े-लिखे लोग मुझे कहते हैं कि आप ठगे जा रहे हैं। आपके हाथमें सिर्फ दान-पत्रके कागज ही रहनेवाले हैं। जमीन नहीं आनेवाली है।"

दूसरे दिन सांसअी जाते समय अेक विद्यार्थीने शामकी घटनाका जिक्र करते हुअे विनोबाजीसे कहा, "वह किसान दानकी बात कर रहा था। अिसका अर्थ यह कि वह समझ रहा था मैं दान दे रहा हूं। अुसे तो यह समझना चाहिये था कि मैं गरीबोंका हक दे रहा हूं।" विनोबाजी कुछ गंभीर स्वरमें कहने लगे, "आप लोग अुस भारतीय किसानकी भाषा नहीं समझ सकते। अपने मनमें सोचते भी हैं तो विदेशी भाषामें। आपकी हककी बात वह क्या जाने? हिन्दी भाषामें 'हक' के लिअे 'अधिकार' शब्दका प्रयोग किया जाता है। परंतु अधिकारमें कर्तव्यकी भावना निहित है। भारतीय संस्कृति अधिकारकी बुनियाद पर खड़ी है। वह कहती है, तुम अपना कर्तव्य करते चले जाओ, तुम्हें अपना हक स्वाभाविक रूपसे हासिल होगा। और दानमें क्या बुराअी है? मेरी भाषा वह किसान ही आसानीसे समझ सकता है। वह मूक है परंतु अुसकी भाषा मेरी वाणी द्वारा प्रगट हो रही है। आपकी हककी भाषा वह नहीं समझ सकता। क्योंकि अुसका मन भारतीय संस्कृतिकी गोदमें पनपा है। जयप्रकाशजी देहातियोंको किस भाषामें समझाते हैं, जरा देखो न। वे कहते हैं, "अिस चार दिनकी जिन्दगीके लिअे अितनी हाय-हाय काहेको? अुसके बाद कितनी लंबी सफर तय करनी है, जरा अुसकी भी तो चिन्ता करो। वहां आपकी धरती-संपत्ति आपका साथ नहीं देगी। वहां तो आपका कर्म ही आपका साथ देगा।" चर्चा चलती रही। विद्यार्थीने कहा, "आप नैतिक दबावकी जो बात करते हैं, वह तो हमें पसन्द आती है। परंतु हृदय-परिवर्तनकी प्रक्रिया पर हमारा विश्वास नहीं है। अुसके लिअे हजारों साल भी लग सकते हैं।" मुकाम आ गया और चर्चा अधूरी ही रह गअी।

फिर शामकी प्रार्थना-सभामें विनोबाजीने हृदय-परिवर्तनके ही विषयका विवेचन किया। धर्म-चक्र-प्रवर्तनकी बात तो हम हमेशा सुनते आये हैं। परंतु अुस भाषणसे अुसका यथार्थ स्वरूप ध्यानमें आया। धर्मविचार और जमानेकी मांग जब दोनों जुड़ जाते हैं, तब धर्म-चक्र-प्रवर्तन होता है।

भाषणका आरंभ नैतिक ताकतके विश्लेषणसे हुआ। विनोबाजीने कहा, "हम अेक नैतिक ताकत पैदा करना चाहते हैं। हिन्दुस्तानने अपनी आजादी अेक अनोखे ढंगसे हासिल की। अिसलिअे अेक नैतिक ताकत निर्माण हुअी। आज भी हिन्दुस्तानमें कोअी ताकत पैदा हो सकती है तो वह नैतिक ताकत ही है। हम सबको यह धर्म सिखाना चाहते हैं कि भूखे पड़ोसीकी चिन्ता करना हमारा कर्तव्य है। आसपासके लोगोंमें भूख, अज्ञान और बीमारी हो, तो जिनके पास धन, बुद्धि और शक्ति है अैसे लोगोंको कभी सुख नहीं मालूम होना चाहिये। अिसीको हम हृदय-परिवर्तन कहते हैं।

"नैतिक दबाव और हृदय-परिवर्तनमें फर्क करना ही गलत है। बिहारमें अब तक चालीस हजार लोगोंने दान दिया है। जमीन तो ज्यादा नहीं मिली, क्योंकि अुसमें बहुत सारे गरीब थे। परंतु अुसका प्रभाव अब बड़े लोगों पर हो रहा है। अुनके दिल अब पसीज रहे हैं। अेक भावना अुन पर हावी हो रही है, जिसको वे टाल नहीं सकते। और अिस जिलेमें तो अेक राजा (पालकोटके) हमारे अेजेंट बनकर घूम रहे हैं। क्या यह हृदय-परिवर्तन नहीं है? परन्तु हृदय-परिवर्तन हिसाबसे नहीं होता। अेक मनुष्यका हृदय-परिवर्तन हुआ, तो आसपासके पचासों लोगों पर अुसका असर होता है। यहां पर अेक ताना भगत पैदा हुआ, तो अुसने हजारोंको भक्त बनाया। अिसीको मनुष्यके विचारका दबाव कहते हैं। अिसीको लोकलज्जा कहते हैं। यह हिंसा शक्तिसे सर्वथा भिन्न है। वेदमें कहा है — दान दिया जाता है वह लोकलज्जासे दिया जाता है। अिसलिअे लोकलज्जा अेक बड़ी बात है। सारा समाज क्या कहता है, यह देखकर कुछ करना हृदय-परिवर्तन ही है। हृदय-परिवर्तनकी डिग्री नापना ठीक नहीं है। अिसलिअे हृदय-परिवर्तनकी हंसी मत करो।

"बाहरकी परिस्थितिसे हृदय-परिवर्तन होता है और हृदय-परिवर्तनका परिणाम बाहरकी परिस्थिति पर होता है। अेक दूसरेका परिणाम अेक दूसरे पर होता है। बीजसे फल होता है और फलसे बीज पैदा होता है। अगर किसी व्यक्तिका बुढ़ापेमें लड़का मर गया और अुसमें वैराग्य निर्माण हुआ, तो क्या आप यह कहेंगे कि बुढ़ापेके कारण और लड़केकी मृत्युके कारण वैराग्य निर्माण हुआ है, अिसलिअे वह सच्चा नहीं है? हां, यह बात सही है कि जब वह जवान था और अुसका लड़का जिन्दा था, तब अुसमें आसक्ति थी। परंतु कअी लोग बूढ़े होते हैं और कअी लोगोंके लड़के मर जाते हैं, फिर भी वे वैरागी नहीं बनते। अिसका मतलब यह है कि अुसके हृदयमें पहलेसे ही कुछ भावना थी और फिर लड़केकी मृत्यु अेक निमित्त बन जाती है। अिसलिअे हरअेक मनुष्यके हृदयमें अच्छी भावना है, अैसा विश्वास रखो। हमने हरअेकको मत (वोट) का हक दिया है। अिसके मानी यही हैं कि हम मानते हैं हरअेकके हृदयमें सद्भावना है।

"हम दो बाजूसे काम कर रहे हैं। (१) हम हरअेकके — गरीब-श्रीमान सबके — हृदयमें जो परमेश्वर है अुस पर भरोसा रखते हैं। (२) हम अैसी परिस्थिति निर्माण करना चाहते हैं, जिससे लोगोंमें अैसी जागृति पैदा हो, जिसमें लोगोंसे दान दिये बगैर नहीं रहा जाय। अिस तरह नैतिक जागृति यानी हृदय-परिवर्तन और जन-जागृति, अैसी दोहरी जागृति हम करना चाहते हैं। केवल लोक-जागृति हुअी और नैतिक जागृति नहीं हुअी, तो परिणामस्वरूप हिंसाकी शक्ति पैदा हो सकती है। और केवल नैतिक जागृति हुअी तो काम बननेमें बहुत समय लगेगा। अिसलिअे हम दोहरा काम कर रहे हैं। जैसे पंछीके दो पंख होते हैं, अेक पंखसे वह अुड़ नहीं सकता, वैसे ही धर्म-कार्य दो तरहसे होता है। अन्दरसे जागृति निर्माण करनेसे और परिस्थितिमें परिवर्तन करनेसे।

"सामान्य धर्मप्रचार और क्रान्ति या धर्म-चक्र-प्रवर्तन ये दो भिन्न-भिन्न वस्तुअें हैं। सामान्य धर्म तो ऋषि और संत लोग हमेशा

www.vinoba.in

समझाते रहते हैं। अिसलिअे सर्वसामान्य धर्मप्रचार अेक बात है। और जमानेकी मांग क्या है, यह पहचान कर धर्मविचारको अुसके साथ जोड़ देना दूसरी बात है। गांधीजीने देशको अिसी तरीकेसे अहिंसा सिखाअी है। प्रेमसे, अहिंसासे लड़नेकी बात तो पुरानी ही थी। परंतु अुसे वे स्वराज्यके साथ नहीं जोड़ते, तो सिर्फ अुन्हें दस-बीस अनुयायी ही मिल पाते। अुस समय हम तलवारसे नहीं लड़ सकते थे, क्योंकि निःशस्त्र थे और अंग्रेज लोग शस्त्रोंमें हमसे बहुत ज्यादा ताकतवर थे। अिसलिअे अहिंसासे लड़ना आवश्यक ही था, परिस्थिति ही अुसके अनुकूल थी। अिस तरह आन्तरिक धर्मविचारका बल और परिस्थितिका बल — अिन दोनोंको जोड़कर अुन्होंने देशको अहिंसा सिखाअी और अुसीसे हमें स्वराज्य प्राप्त हुआ। अुसी तरह आज गरीबोंको जमीनकी अत्यन्त आवश्यकता है। सिर्फ हिन्दुस्तानमें ही नहीं, सारे अेशियामें जमीनकी भूख है। गरीबोंको जमीन दिये बगैर वे शान्त नहीं रह सकते। अैसी परिस्थिति है। और अुसीके साथ हम लोगोंको यह धर्मविचार समझा रहे हैं कि भूखे पड़ोसीको जमीन देनी चाहिये। जमीन परमेश्वरकी देन है, अिसलिअे अुस पर सबका समान अधिकार है। अगर यही विचार हम कुछ ५००–१००० साल पहले समझाते, तो लोग हमारी बात नहीं सुनते। अिसलिअे यह बात भी जमानेकी मांगके साथ जोड़ देते हैं, तो सिर्फ मामूली धर्म-प्रचार नहीं होता है, बल्कि धर्म-चक्र-प्रवर्तन होता है। संत और ऋषि-मुनि मामूली धर्मप्रचार तो हमेशा करते रहते हैं, परंतु अुससे धर्म-चक्र-प्रवर्तन नहीं होता है। लेकिन जहां परिस्थितिके साथ धर्मभावना जुड़ जाती है, वहां वह लोगोंके दिलको छूती है। अुसीसे बड़ी शक्ति पैदा होती है। और अुससे धर्म-चक्र-प्रवर्तन होता है।"

सभामें श्रोतागण तो अपढ़ किसान थे। अिसलिअे विनोबाजीने यही भाव सरल भाषामें समझा दिया:—

"अेक अैसा मौका होता है जब धर्म करनेकी प्रेरणा होती है। आज ग्रहणका दिन है और कोअी दान देनेकी बात समझाता है, तो वह फौरन मनको पकड़ लेती है। वैसे दान तो हर रोज करना चाहिये, लेकिन ग्रहणके दिन वह बात जल्द समझमें आती है, क्योंकि वह अेक खास मौका है। आज हमें लाखों अेकड़ जमीन मिल रही है। पहले तो अैसा कभी नहीं हुआ था। तो क्या अेकदम अितने सारे लोगोंके दिल धर्मभावनासे भर गये हैं? अैसा तो नहीं हो सकता। अिस दानमें धर्मकी भावना है। परंतु अुसके साथ परिस्थितिकी आवश्यकता, जमानेकी मांग और युग-धर्म भी है।

"सबका हृदय-परिवर्तन तब होता है, जब जमानेकी मांग और धर्मकी भावना दोनों जुड़ जाते हैं। यह बिलकुल आंतरिक हृदय-परिवर्तन नहीं कहा जायगा, परन्तु कुछ हृदय-परिवर्तन जरूर है। अगर कोअी पूरे हृदय-परिवर्तनके साथ दान देता है, तो अुसे मोक्ष मिल ही जायगा। परंतु थोड़ी धर्मभावनासे देता है, तो हमारे आन्दोलनके लिअे अुतना भी काफी है। हमारे आन्दोलनके लिअे यह जरूरी नहीं है कि हर कोअी पूरी चित्त-शुद्धिसे ही दान दे। आज जमीन देना आवश्यक है, अिस बातको लोग समझ लें तो हमारे लिअे अुतना ही बस है।

"यह अीश्वरका काम है और वही मेरे जैसे तुच्छ औजारके जरिये अुसे कर रहा है। नहीं तो मेरे जैसे सामान्य मनुष्यके शब्दोंकी आज अितनी कीमत नहीं होती। परंतु वह जब चाहता है तो सब कुछ हो सकता है। लोग पूछते हैं कि यह काम असफल हुआ तो क्या होगा? लेकिन हम अिस तरह नहीं सोचते। यह काम विनोबाका नहीं है, परमेश्वरका है। अिसलिअे यह असफल हुआ तो विनोबाकी फजीहत नहीं होगी, बल्कि परमेश्वरकी ही फजीहत होगी।"

नि० दे०

खादी और गांवोंकी बेकारी

बम्बअीके भूतपूर्व अर्थमंत्री और अखिल भारतीय खादी और ग्रामोद्योग बोर्डके अध्यक्ष श्री वैकुण्ठलाल मेहताने बेकारीके सवाल पर अेक निवेदन जाहिर करते हुअे कहा कि "गांवोंकी बेकारी दूर करनेके लिअे खादीका पुनरुद्धार ही अेकमात्र अुपाय है।"

श्री मेहता कहते हैं, "बहुतेरे देशोंमें सामाजिक सुरक्षाकी योजनाअें चल रही हैं, जो नागरिकोंको बेकारीके खिलाफ संरक्षण प्रदान करती हैं। हमारे देशमें जब अैसी योजनाओंकी तजवीज की जाती है, तो हम लोग बड़े-बड़े अुद्योगोंमें काम करनेवाले औद्योगिक मजदूरोंके ही विषयमें सोचते हैं। लेकिन हमारे यहां अैसे औद्योगिक मजदूरोंकी संख्या अपेक्षाकृत कम है, शारीरिक मेहनत करनेवाले हमारे ज्यादा मजदूर तो खेतीके अुद्योगमें लगे हुअे हैं; और अुनके तथा अुनके परिवारोंके लिअे अपर्याप्त और आंशिक काम-धंधेका सवाल कभी-कभीका नहीं, बल्कि हमेशाका है। मजदूरोंके अेक हिस्सेके लिअे तो सामाजिक सुरक्षा बनायी जाय और दूसरे हिस्सेके लिअे न बनायी जाय, यह अेक अनुचित भेदभाव होगा, और यह हमारी समग्र राष्ट्रकी अुन्नति करनेकी नीतिके भी खिलाफ होगा। लेकिन देहातोंमें बेकारीके खिलाफ संरक्षणकी व्यवस्था करना बहुत बड़ी आर्थिक जिम्मेदारी स्वीकार करना है; वह सचमुच अितनी बड़ी जिम्मेदारी हो जाती है कि केन्द्र अथवा राज्यकी सरकारें व्यवहारमें अुसे अुठा ही नहीं सकतीं।

"लेकिन साथ ही लाखों-करोड़ों आदमियोंको — कुछको साल भर और बाकी कुछको बड़े अरसे तक — बेकार रहने देना आर्थिक दृष्टिसे बहुत गलत है। दूसरी दृष्टियोंसे भी अुसमें अनेक दोष हैं, पर अभी हम अुनका विचार नहीं करेंगे। अैसे लोगोंको राहत पहुंचानेके लिअे 'निर्वाह-खर्च' (डोल) की व्यवस्था करनेकी बात सोची जा सकती है। लेकिन अेक तो अितने ज्यादा आदमियोंके लिअे 'डोल' देना हमारे यहां व्यवहार्य नहीं है और व्यवहार्य हो भी तो वह समाजके हितकी दृष्टिसे अनुचित है। तो, जैसा महात्मा गांधी दावा करते थे, अिस परिस्थितिका खादी ही अेकमात्र अिलाज है।

हाथ-करघेका कपड़ा

"यद्यपि खादीका अुत्पादन बढ़ानेसे ज्यादातर काम हाथ-कताअी करनेवालोंको ही मिलेगा, जो कि अुसे फुरसतके समयके पूरक कामकी तरह करेंगे, लेकिन साथ ही यह भी नहीं भूलना चाहिये कि अुससे धुनाअी करनेवाले या बुनाअी करनेवाले लोगोंको भी काम मिलेगा और अिन लोगोंको अुसमें पूरा काम मिलता है।

"हाथ-करघा अुद्योगकी हमेशा यह शिकायत रही है कि अुसे पूरा सूत नहीं मिलता और फलतः अुसकी अुत्पादनकी क्षमता कामके अभावमें बेकार पड़ी रहती है। हाथ-करघेके बुनकरोंको पूरे माहका काम शायद ही मिलता हो। हाथ-कते सूतका अुत्पादन बढ़नेसे हाथ-करघेके बुनकरोंको ज्यादा काम मिलेगा और तब अुन्हें तथा अिस अुद्योगसे संबद्ध दूसरे कारीगरोंको कामकी कमी नहीं रहेगी।"

खादीके लिअे राज्यके संरक्षणकी मांग करते हुअे श्री मेहता कहते हैं, "अिससे हो सकता है कि मिल तथा खादीके कपड़ेकी कीमतोंमें आज जो बहुत ज्यादा फर्क पाया जाता है, वह कम हो जाय और खादी-अुद्योगका मजबूत पाये पर अैसा नया संघटन किया जा सके कि राष्ट्रीय योजनामें अुसे जो कार्य दिया गया है, अुसे वह योग्यतापूर्वक पूरा कर सके। स्टैन्डर्ड किस्मोंकी खादीका टिकाअूपन अुसी किस्मके मिलके कपड़ेसे किसी तरह कम नहीं होता, तब भी खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड अुसके अुत्पादनका स्तर और ज्यादा अूपर अुठानेकी कोशिश करेगा। अुत्पादन बढ़ानेसे कीमतें घटाअी

www.vinoba.in

जा सकनेकी आशा कर सकते हैं। कपास खरीदने और अुत्पन्न खादी बाजारमें बेचनेके कार्यमें ज्यादा सावधानी तथा अधिक सुविधापूर्ण अुपायोंका अवलम्बन करनेसे भी कीमतें घटानेमें मदद होगी। लेकिन कीमतें घटानेका मुख्य अुपाय तो अुत्पादनकी सुधरी हुअी विधियोंका अर्थात् ज्यादा कार्यक्षम औजारों और अुत्पादनके बेहतर तरीकोंका प्रयोग ही हो सकता है। महात्मा गांधी अखिल भारत चरखा-संघसे खादी-कामके अिसी पहलूका अनुसंधान करनेकी अपेक्षा करते थे और खादी-बोर्ड भी आरंभसे अिसी पहलू पर ज्यादा ध्यान देना चाहता है।

"खादी और ग्रामोद्योगोंकी अुन्नतिका मुख्य आर्थिक औचित्य तो वही है, जिसे दृष्टिमें रखकर योजना-कमीशनने अपनी रिपोर्टमें जगह-जगह राष्ट्रीय अर्थ-रचनामें ग्रामोद्योगोंकी अनिवार्यता स्वीकार की है। अुसने ग्राम-विकासके कार्यक्रममें ग्रामोद्योगोंको अुतने ही महत्त्वका स्थान दिया है, जितना कि खेतीके अुत्पादनकी नयी रचनाको। कमीशन विविध ग्रामोद्योगोंको गांवोंकी पुनर्रचनाका आवश्यक अंग मानता है, कारण अेक तो विशेष पूंजी लगाये बिना ही अुनमें साधारण अुपयोगकी वस्तुओंका अुत्पादन होता है, दूसरे अुनसे हमारे गांवोंमें खेती-काममें लगे हुअे अैसे मजदूरोंको, जिन्हें या तो पूरा काम नहीं मिलता या जिन्हें बेकार ही रहना पड़ता है, गांवोंमें ही काम-धंधा मिलनेकी व्यवस्था हो जाती है।

"केन्द्र और राज्यकी सरकारें तथा साधारण जनता अिस महत्त्वके काममें अिन गृह-अुद्योगोंकी ही वस्तुअें खरीदकर — चाहे अुसमें अुन्हें कुछ ज्यादा दाम देने पड़ें — बहुत मदद पहुंचा सकते हैं।

[ता० २१-७-'५३ के 'हिन्दू' से]
(अंग्रेजीसे)

टिप्पणियां

अेक सादा सवाल

प्रेसिडेन्ट आअिसनहोवरका लड़का मेजर जॉन आअिसनहोवर जुलाअी १९५२ से कोरियामें लड़ाअीके मोर्चे पर था। अैसे हर किसी पिताकी तरह, जिसका पुत्र कोरियामें लड़ाअीके मोर्चे पर काम कर रहा था, प्रेसिडेन्ट आअिसनहोवरको भी युद्ध-विरामके समझौते पर दस्तखत होनेकी अधिकृत सूचना पाकर बड़ी राहत मिली और खुशी हुअी। अुन्होंने कहा, "युद्ध-विरामके समझौते पर दस्तखत हो गये। . . . मैं आशा करता हूं कि मेरा लड़का जल्दी ही घर लौट आवेगा।"

बेशक हरअेक पिता और माताको, भाअियों और बहनोंको और सभीको अपने प्रियजनोंके घर लौट आनेसे आनन्द होगा। लेकिन वे अितना ही पूछते हैं : आखिर हमारे प्रियजनोंके हमसे दूर जानेकी और वहां दूसरे किसीके प्रियजनोंको — प्रिय पुत्र, भाअी, बहन या पति वगैराको — मारनेकी और शायद अुस लड़ाअीमें, जिसे अुचित नहीं कहा जा सकता, मारे जानेकी जरूरत क्यों पैदा होनी चाहिये? प्रेसिडेन्ट आअिसनहोवरके जैसे पिताओंको और अुनके जैसे दूसरे लोगोंको, जिनके हाथमें लाखों-करोड़ों मानवोंका भाग्य है, पीड़ित मानवताके अिस सादे प्रश्नका अुत्तर देना है।

३०-७-'५३ म० प्र०
(अंग्रेजीसे)

खादी-बोर्ड द्वारा आर्थिक मददकी घोषणा

अखिल भारतीय खादी और ग्रामोद्योग बोर्डने प्रमाणित संस्थाओंको खादी और खादी-अुत्पादनके औजारोंकी बिक्री पर, वस्त्र-स्वावलम्बनकी खादीके बुनाअी-खर्च पर और व्यवस्था-खर्च पर नीचे लिखे मुताबिक आर्थिक मदद देनेकी घोषणा की है :

१. खादी-बिक्रीके लिअे अेक रुपये पर ३ आनेकी मदद;

२. वस्त्र-स्वावलम्बनकी अेक वर्गगज खादीके बुनाअी-खर्च पर ५ आने प्रति वर्गगज या ५० प्रतिशत (जो भी कम हो) मदद;

३. वस्त्रस्वावलम्बन-योजनाकी व्यवस्थाके लिअे प्रमाणित संस्थाओं द्वारा बुनी गअी अेक वर्गगज खादीके पीछे २ आनेकी मदद;

४. प्रमाणित संस्थाओंको रु० २००० तककी खादी-अुत्पादन और अितनी ही रकम तककी फुटकर बिक्री पर ६¼ प्रतिशत मदद दी जायगी;

५. मान्य किये हुअे किस्मके हर धुनाअी मोडिया पर (अेक नये प्रकारकी धुनकी, जिसकी कीमत ३५ से ४० रुपयेके करीब होती है) रु० १५ की रिआयत दी जायगी।

६. किसी भी नमूनेके हर चरखे पर (बांसके चरखेको छोड़कर) रु० २-८-० की मदद;

७. अपने सहायक सरंजामके साथ पूर्ण हर करघे पर रु० ५० की मदद दी जायगी।

५, ६ और ७ के संबंधमें अुन्हीं औजारों पर मदद दी जायगी, जो प्रमाणित कारखानोंमें बने होंगे। प्रमाणित केन्द्रों और भंडारोंको बताअी हुअी रिआयतके साथ ग्राहकोंको औजार बेचनेका अधिकार दिया जाता है। अिस रिआयतकी भरपाअी अुन्हें अुनके दोहरे बिलों और पाक्षिक बिक्री-रिपोर्टोंकी जांचके बाद कर दी जायगी।

अूपरकी मदद तुरन्त देना शुरू कर दी जायगी।

वी० पी० सबनीस
दफ्तर-मंत्री
(अंग्रेजीसे) अ० भा० खा० ग्रा० बोर्ड

विवेक और साधना

लेखक : केदारनाथ

संपादक

किशोरलाल मशरूवाला : रमणीकलाल मोदी

कीमत ४-०-० डाकखर्च १-२-०

डापूके पत्र—२

सरदार वल्लभभाअीके नाम

संपादिका : मणिबहन पटेल

कीमत ३-८-० डाकखर्च १-२-०

नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद-९

विषय-सूची

		पृष्ठ
हिन्दी-अुर्दूका सवाल	गांधीजी	१७७
निकम्मा शिक्षण	विनोबा	१७७
भारतकी गृहनीतिका क्या?	विल्फ्रेड वेलॉक	१७८
क्या यह टाला नहीं जा सकता था?	मगनभाअी देसाअी	१७९
"कोअी नहीं है गैर बाबा"	मगनभाअी देसाअी	१८०
अुत्तर प्रदेशका भाषा-संबंधी विवाद	मगनभाअी देसाअी	१८१
रांची जिलेमें विनोबाजी	नि० दे०	१८२
खादी और गांवोंकी बेकारी	वैकुण्ठलाल मेहता	१८३
टिप्पणियां :		
गरीबोंका खयाल करो	म० प्र०	१७९
अेक सादा सवाल	म० प्र०	१८४
खादी-बोर्ड द्वारा आर्थिक मददकी घोषणा	वी० पी० सबनीस	१८४

www.vinoba.in